पाठ्यक्रम - १४

१४.अ जैन जीव विज्ञान - नारकी जीव

नरक गति में रहने वाले जीव नारकी कहलाते हैं। वे आपस में कभी भी प्रीति - स्नेह को प्राप्त नहीं होते अत: इन्हें नारत भी कहते हैं। नारकियों का शरीर टेढ़ा-मेढ़ा (हुण्डक संस्थान वाला), अत्यन्त डरावना, धुएँ के रंग वाला, अत्यन्त दुर्गंध युक्त, वैक्रियक किन्तु खून-पीव-मांस से युक्त होता है। सभी नारकी नपुंसक वेद वाले होते हैं। नीचे-नीचे के नारकी सदा अशुभ से अशुभ लेश्या वाले, परिणाम वाले, देह वाले और विक्रिया वाले होते हैं। प्रथम पृथ्वी के नारकियों में शरीर की जघन्य ऊँचाई तीन हाथ प्रमाण होती है वही नीचे की ओर बढ़ते-बढ़ते अंतिम सप्तम पृथ्वी में ५०० धनुष प्रमाण हो जाती है अर्थात् नारकियों की उत्कृष्ट ऊँचाई ५०० धनुष प्रमाण होती है।

नारकी अधोलोक में एक के नीचे एक जो सात पृथ्वियाँ हैं, उनमें बने हुए बिलों में रहते हैं।

० नरकों में उत्पत्ति के निम्न कारण हैं :- बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह का भाव, हिंसादि क्रूर कार्यों में निरंतर प्रवृत्ति, परधन हरण की वृत्ति, इंद्रिय विषयों में तीव्र आसक्ति, मरण के समय क्रूर परिणाम, सप्त व्यसनों में लिप्तता, कुत्ते, बिल्ली, मुर्गी आदि क्रूर प्राणियों का पालन, शील और व्रतों से रहितता, जीर्णोद्धार, जिनपूजा, प्रतिष्ठा और तीर्थ यात्रा आदि के निमित्त समर्पित धन का उपभोग, अत्यधिक हिंसा वाले व्यापार जैसे चमड़ा, शराब, कीट नाशक, विष, शस्त्र आदि हिंसक वस्तुओं का व्यापार।

रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियों के नाम, पटल, बिल एवं नारकियों की जघन्य, उत्कृष्ट आयु सारणी से समझते हैं।

पृथ्वी	पटल	बिल	जघन्य आयु	उत्कृष्ट
रत्न प्रभा	१३	३० लाख	१० हजार वर्ष	१ सागर
शर्करा प्रभा	११	२५ लाख	१ सागर	३ सागर
बालुका प्रभा	९	१५ लाख	३ सागर	७ सागर
पंक प्रभा	७	१० लाख	७ सागर	१० सागर
धूम प्रभा	५	३ लाख	१० सागर	१७ सागर
तम प्रभा	३	५ कम १लाख	१७ सागर	२२ सागर
महातम प्रभा	१	५ मात्र	२२ सागर	३३ सागर
कुल सात पृथ्वी	४९	८४ लाख	१० हजार ज.	३३ सागर उ.

० नारकियों को भूख इतनी अधिक लगती है कि तीन लोक का अनाज खा लें तो भी न मिटे और प्यास इतनी अधिक लगती है कि सारे समुद्र का पानी पी लें तो भी तृप्त न हो किन्तु वहाँ खाने के लिए अन्न का एक दाना व पीने के लिए पानी की एक बूँद भी नहीं मिलती।

० जिस प्रकार तलवार के प्रहार से भिन्न हुआ, कुएँ का जल फिर से मिल जाता है उसी प्रकार बहुत सारे शस्त्र से छेदा गया नारकियों का शरीर भी फिर से मिल जाता है।

० नारकियों को चार प्रकार के दु:ख होते हैं शारीरिक दु:ख, क्षेत्रकृत दु:ख, असुरदेवो कृत दु:ख एवं मानसिक दु:ख।

० असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च मरकर प्रथम नरक तक जा सकता है उसके आगे नहीं उसी प्रकार सरीसृप द्वितीय नरक तक, पक्षी तीसरे नरक तक, सर्प चौथे नरक तक, सिंह पाँचवें नरक तक, महिला छटवें नरक तक एवं पुरुष सातवें नरक तक जा सकता है। स्वयंभूरमण समुद्र में रहने वाला सम्मूर्च्छनज महामत्स्य एवं तंदुल मत्स्य भी सप्तम नरक तक जा सकता है।

० प्रथम पृथ्वी से क्रमश: ८, ७, ६, ५, ४, ३ एवं २ बार तक एक जीव लगातार नरकों में जन्म ले सकता है। इतना विशेष है कि नारकी मरण कर पुन: नारकी नहीं बनता, अत: बीच में मनुष्य अथवा तिर्यञ्च में जन्म धारण करता है।

पाठ्यक्रम - १४

१४.ब जैन जीव विज्ञान - तिर्यञ्च जीव

जो मन वचन काय की कुटिलता/वक्रता को प्राप्त हैं। प्राय: तिरस्कार को प्राप्त होते हैं वे जीव तिर्यञ्च कहलाते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के जीव नियम से तिर्यञ्च जीव कहे जाते हैं।

एकेन्द्रिय जीव

० सामान्य पृथ्वी, पृथ्वी काय, पृथ्वी कायिक एवं पृथ्वी जीव

1. सामान्य पृथ्वी - जिसे किसी जीव ने अभी तक अपना शरीर नहीं बनाया ऐसा पृथ्वी पिंड, सामान्य पृथ्वी कहा जाता है। स्वर्गों में स्थित उपपाद शय्या सामान्य पृथ्वी कही गई हैं।

2. पृथ्वी काय - जिसमें से पृथ्वी जीव निकल गया हो, ऐसा पृथ्वी पिंड पृथ्वी काय है यह भी अचेतन है जैसे गरम किया गया नमक, ईंट।

3. पृथ्वी कायिक - पृथ्वी जीव सहित पृथ्वी पिंड को पृथ्वी कायिक जीव कहते हैं यह सचेतन है। जैसे खदान में पड़ा एवं आसपास दिखने वाला पत्थर।

4. पृथ्वी जीव - पृथ्वी नाम कर्म से सहित, विग्रह गति में स्थित जीव पृथ्वी जीव है। विग्रह गति का अर्थ - नवीन शरीर प्राप्त करने के लिए होने वाली जीव की मोड़े वाली गति। इसी प्रकार से जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में भी इन भेदों को लगा लेना चाहिए।

० पृथ्वी कायिक जीव के शरीर का आकार मसूर के समान होता है। इसकी अधिकतम आयु बाईस हजार वर्ष एवं जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

० जल कायिक जीव के शरीर का आकार मोती के समान (जल की बिन्दू) तथा उत्कृष्ट आयु ७००० वर्ष, जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

० वायु कायिक जीव के शरीर का आकार पताका (ध्वजा) के समान तथा उत्कृष्ट आयु ३००० वर्ष, जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

० अग्निकायिक जीव का आकार सुई की नोंक के समान तथा उत्कृष्ट आयु तीन दिन एवं जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

० वनपस्पति कायिक जीव का आकार अनेक प्रकार का है तथा उत्कृष्ट आयु १०,००० वर्ष, जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

आरती

तीर्थ बिहारी गुरुराज आज थारी आरती उतारूँ।
वर्षों से सूना पड़ा नाथ आज मन मंदिर पधारो।।
आत्म पिपासु ये चातक आए,
अध्यातम अमृत पाने को आए,
वर्षा दो अमृत आज
कि आज थारी आरती उतारूँ ।.....१
कब से ये प्यासी हैं अखियाँ हमारी
वीतराग मूरत ये प्यारी न्यारी
सपना कब होगा साकार
कि आज थारी आरती उतारूँ। २
विद्या गुरु की है महिमा न्यारी
उनके आशीष का अतिशय भारी,
भक्ति का पाऊँ उपहार
कि आज थारी आरती उतारूँ ।.....३
चरणों की रज को सिर पर लगाऊँ
जन्म-मरण के कष्ट मिटाऊँ
मुक्ति का पाऊँ साम्राज्य
कि आज थारी आरती उतारूँ ।.....४
मूक पशु का सुनकर क्रंदन
बनकर आए वीर के नंदन
करुणा के अवतार
कि आज थारी आरती उतारूँ ।.....५

द्वीन्द्रियादि जीव

द्विइन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष एवं जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है। उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन प्रमाण शंख की होती है यह शंख स्वयम्भू रमण नामक अंतिम द्वीप में पाया जाता है।

त्रीन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु उनचास दिन (४९) एवं जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है। उत्कृष्ट अवगाहना एक कोश प्रमाण चींटी की स्वयंभू रमण द्वीप में पाई जाती है।

चतुरीन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु छह माह (६), जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती हैं। उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन प्रमाण भ्रमर (भौंरा) की होती है।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च के भोगभूमिज और कर्म भूमिज की अपेक्षा दो भेद हैं। भोगभूमि में जन्म लेने वाले तिर्यञ्च भोग भूमिज कहे जाते हैं।

भोगभूमि तिर्यञ्च मुलायम हलुवे-जैसी घास खाकर सुख पूर्वक निवास करते हैं। वे मरकर स्वर्ग ही जाते हैं परिणामों की निर्मलता होने से शेर और गाय सभी प्रीति पूर्वक रहते हैं। कर्म भूमि तिर्यञ्च प्राय: दु:खों को सहन करते हैं, बोझा ढोना आदि कार्य करते हैं। घास, पत्ती आदि खाकर पेट भरते हैं। कुछ क्रूर तथा कुछ सरल परिणामी होते हैं।

तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य, जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है। ''पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्कृष्ट अवगाहना महामत्स्य की'' १००० योजन लम्बाई, ५०० योजन चौड़ाई और २५० योजन मोटाई प्रमाण'' होती है।

कर्मभूमिज तिर्यञ्चों के जलचर, थलचर और नभचर की अपेक्षा से तीन भेद होते हैं। जल में रहने वाले जीव जैसे मछली, मगर, मेंढक, कछुवा आदि जलचर जीव हैं। पृथ्वी पर रहने वाले गाय, घोड़ा, शेर आदि थलचर जीव है एवं आकाश में उड़ने वाले कोयल, चिड़िया, तोता आदि नभचर जीव हैं।

मायाचारी करना, धर्मोपदेश में मिथ्या बातों को मिलाकर उनका प्रचार करना, शील रहित जीवन बिताना, जाति-कुल में दूषण लगाना, विसंवाद में रुचि होना, सद्गुण लोप और असद्गुणों का ज्ञापन करना इत्यादि परिणामों से जीव तिर्यञ्च गति में जन्म लेता है एवं जो पापी जिनलिंग को ग्रहण करके संयम एवं सम्यक्त्व भाव छोड़ देते हैं और पश्चात् मायाचार में प्रवृत्त होकर चारित्र को नष्ट कर देते हैं, जो मूर्ख मनुष्य कुलिंगियों को नाना प्रकार के दान देते हैं या उनके भेष को धारण करते हैं, वे भोगभूमि में तिर्यंच होते हैं।

ऑपरेशन सफल हो जाए पर मरीज मर जाए तो...., धन बहुत हो पर सुख शान्ति छिन जाए तो....।

स्वतंत्रता संग्राम में जैन

सन् १८५७ की जनक्रान्ति से प्रारम्भ हुआ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सन् १९४७ ई. तक चलता रहा। ९० वर्षो की इस आजादी की लड़ाई में अनेक जैन देश प्रेमियों ने जेलों की यातनाएँ सहीं, पुलिस के डंडों की मार सही एवं अन्त में हँसते-हँसते मौत को गले लगाकर शहीद होने का गौरव प्राप्त किया।

यद्यपि हमारा जैनधर्म अहिंसा प्रधान है। दया वृत्ति को धारण करने वाला जैन श्रावक एक चींटी को भी नहीं मारता, किन्तु राष्ट्र के सम्मान पर जब-जब ऑच आई तब-तब जैन धर्मावलम्बी कभी पीछे नही रहे। भारत की आजादी के आन्दोलन में लगभग २० जैन शहीदों ने अपना बलिदान देकर तथा लगभग ५००० जैन पुरुष-महिलाओं ने संघर्ष करते हुए जेल जाकर आजादी के मार्ग को प्रशस्त किया।

धन से खिलौने तो खरीद सकते हैं... पर संस्कार नहीं।
धन से किताब तो खरीद सकते हैं ... पर बुद्धि नहीं।
धन से बिस्तर तो खरीद सकते हैं ... पर नींद नहीं।
धन से शृंगार सामग्री तो खरीद सकते हैं ... पर सुंदरता नहीं।
धन से भोजन सामग्री तो खरीद सकते हैं ... पर भूख नहीं।
धन से दवाई तो खरीद सकते हैं ... पर स्वास्थ्य नहीं।
धन से मकान तो खरीद सकते हैं ... पर सुख-शांति नहीं

जब कोई नहीं आता

जब कोई नहीं आता बड़े बाबा आते हैं।
मेरे दु:ख के दिनों में वो बड़े काम आते हैं।
बाबा मेरी पीड़ा पहचान जाते हैं।।
मेरे दुख के.....।।
मेरी नैया चलती है, पतवार नहीं होती।
किसी और की अब मुझको, दरकार नहीं होती।
मझधार में वो मेरी नाव पार लगाते हैं।।
मेरे दुख के.....।।
दिल से जो याद करे, वो उनके घर आएँ।
दर पे फरियाद करें, ये झोली भर जाए।
खुशियों का जीवन में, पैगाम लाते हैं।।
मेरे दुख के.....।।
ये बड़े दयालु हैं, दुख पल में हरते हैं।
अपने भक्तों का ये, हर काम करते हैं।
दुखियों के दुख को ये जान जाते हैं।।
मेरे दुख के.....।।
ये इतने बड़े होकर, हर किसी से प्यार करें।
सदियों से सुदामा के चावल स्वीकार करें।
ये भक्तों का कहना, सहज ही मान जाते हैं।।

भारत की प्राचीन भाषा - प्राकृत

मूल मंत्र : णमोकार

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

प्राकृत एक लोकभाषा है। अत: इसका अस्तित्व उतना ही पुराना है, जितना कि लोक।

प्राक्-कृत =प्राकृत-पुराकाल से प्राचीन जनभाषाओं को प्राकृत कहते हैं।

संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत का क्षेत्र व काल विस्तृत रहा है। तीर्थंकर जैसे दिव्य पुरुषों ने जन-जन की समझ में आने वाली जन भाषा के द्वारा ही जगत में धर्म की गंगा प्रवाहित की है।

वैदिक सम्प्रदाय ने केवल संस्कृत भाषा को अपनाया, अत: किसी भी वैदिक विद्वान का बनाया हुआ कोई प्राकृत भाषा का ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता, किन्तु जैन सम्प्रदाय ने किसी भी भाषा से अरुचि प्रकट नहीं की। अतएव जैन विद्वानों ने भारतीय मूल भाषा प्राकृत में भी विपुल एवं महत्त्वपूर्ण साहित्य की रचना की तथा संस्कृत भाषा में भी व्याकरण, साहित्य, तर्क, छन्द, अलंकार, कोश, वैद्यक, ज्योतिष, गणित आदि समस्त विषयों पर अनुपम ग्रन्थों की रचना की। काल और क्षेत्र के परिवर्तन से प्राकृत भाषा के भी अनेक रूप हो गए, जिन्हे भाषा-विज्ञानी शौरसैनी महाराष्ट्री, अर्द्धमाग्धी, पाली, पैशाची, अपभ्रंश शिलालेखी व निया प्राकृत आदि कहते हैं।

पुरा साहित्य की प्रकृति, पुराकालीन धर्म, दर्शन तथा जीवन पद्धति को समझने के लिए प्राकृत को समझना आवश्यक है।

दर्शन स्तुति

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन-मरण जी॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी॥
भव-विकट-वन में कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‌यो।
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो॥
धन घड़ी यो धन दिवस यों ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु जी को लख लयो॥
छवि वीतरागी नग्नमुद्रा, दृष्टि नाशा पैं धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण-युत कोटि रवि छवि को हरैं॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥
मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुम चरन जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहुँ तारन तरन जी॥
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि नर, राज परिजन साथ जी।
'बुध' जाँचहूँ तुमभक्ति भव-भव दीजिए शिवनाथ जी॥

जिनवाणी स्तुति

हे भारती माँ! हे भारती माँ! ॥टेक॥
तेरी उतारें सभी आरती माँ ....
अर्हन्त भाषी ये जिनवाणी प्यारी।
गणधर ऋषि और मुनियों ने धारी॥
जो तुमको ध्याते सुख शांति पाते।
जीवन की नैया को तू तारती माँ॥1॥
तेरे श्रवण से खुशी मन में छाई।
नया बोध पाया नई राह पाई॥
दया धर्म संयम के पथ पर चलें हम।
अत: आज मिलकर करें आरती माँ॥ 2॥
माँ तेरी महिमा को कैसे बताऊँ।
अल्पज्ञ हूँ भक्ति से सिर झुकाऊँ॥
सद्ज्ञान का सूर्य तम को करे दूर।
ज्योति सदा फैले भू भारती माँ ॥ 3॥

मैं गाता नहीं औरों की प्रीत चुराने के लिए
मेरा गाना है दुनिया का गम पी जाने के लिए।

घड़ी हमेशा समान गति में चलती है ऊपर जाते समय धीमी नहीं होती नीचे आते समय जल्दी नहीं आती/करती। इसीप्रकार हमको जीवन में समता धारण करना चाहिए।
सिद्धांत ग्रंथ मन को लगाने के लिए है, तो अध्यात्म ग्रंथ मन को हटाने के लिए।
दृढ़ संकल्प और निस्पृह भाव आत्मा के लिए साधना के दो स्तंभ हैं।

प्रायश्चित्त पाठ

शत-शत प्रणाम करते, आशीष हमको देना।
दोषों को दूर करने, अपराध क्षम्य करना।। 1।।
मन से वचन से तन से, अपराध पाप करते।
कृत कारितानुमत से, दुःख-शोक क्लेश सहते।। 2।।
चारों कषाय करके, निज रूप को भुलाया।
आलस्य भाव करके, बहु जीव को सताया।। 3।।
भोजन शयन गमन में, पापों का बंध बाँधा।
अज्ञान भाव द्वारा, अज्ञात पाप बाँधा।। 4।।
दिन रात और क्षण क्षण, अपराध हो रहे हैं।
इस बोझ से दबे हम, पापों को ढो रहे हैं।। 5।।
गुरुदेव की शरण में, प्राचश्चित्त लेने आए।
मुक्ति का राज पाने, भव रोग को नशाए। 6।।

क्षमा प्रार्थना

किया अपराध जो मैंने, तुम्हारे जाने-अनजाने।
क्षमा करना सभी मुझको, क्षमा करता सभी जन को।।
सभी से मित्रता मेरे, किसी से बैर ना क्षण को।
यही है भावना मेरी, जिनेश्वर हो कृपा तेरी।।
किया उपयोग से छेदन, रहा जो भाव वह मुझमें।।
क्षमा करना क्षमा करना, ना दिल में रोष को धरना।
शुद्ध दिल से माँगता हूँ, क्षमा भावों से झुकता हूँ।।

भजन

आशा रहे ना कल की, कल को भुलाया ।
कल्याण के पथिक हो, जग को जगाना ॥
आचार्य सुन्दर दिगम्बर रूपधारी ।
जो आपको निरखता बनता पुजारी ॥

चरण धूल अपने गुरुवर की, शिष्य शीष पर चन्दन है ।
गुरुवर के चरणों का वन्दन, संयम का भी वन्दन है ॥
शिष्य और गुरुवर दोनों में, अमिट प्रेम का बंधन है ।
गुरुवर की हर श्वास शिष्य के भक्ति हृदय का स्पंदन है ॥
भज मन विद्यासागर .....

विद्यासागर मीठे सागर, जल के सागर है खारे ।
सागर से सागर न तारे, पाप-ताप को ना मारे ॥
भव-सागर से विद्यासागर किंतु भव्यजन को तारे ।
पश्चाताप कराकर स्वामी, पाप- ताप को संहारे ॥
भज मन विद्यासागर .....

चक्कर में पड़ने वाले को, माया बहुत चखाती है ।
बनता है जो दास उसे यह, काया बहुत रुलाती है ॥
छाया का पीछा करने पर, छाया हाथ न आती है ।
गुरु सेवा ही भव्य जनों को भव से पार लगाती है ॥
भज मन विद्यासागर .....

विद्यासागर गंगा

विद्यासागर गंगा मन निर्मल करती है।
ज्ञानाद्रि से निकली है, शिवसागर मिलती है।।

इक मूलाचार का कूल, इक समयसार तट है।
दोनों रहते अनुकूल, संयम का पनघट है।।
स्याद्वाद वाह जिसका, दर्शक मन हरती है।
विद्यासागर गंगा मन निर्मल करती है।
ज्ञानाद्रि से निकली है, शिवसागर मिलती है।।१।।
मुनिगण राजा हंसा, गुण मणि मोती चुगते।
जिनवर की संस्तुतियाँ, पक्षी कलरव लगते।।
शिव यात्री क्षालन को, अविरल ही बहती है।
विद्यासागर गंगा मन निर्मल करती है।
ज्ञानाद्रि से निकली है, शिवसागर मिलती है।।२।।

जिसमें परीषह लहरें, और क्षमा की भँवरें हैं।
करुणा के फूलों पर, भक्तों के भंवरें हैं।।
तप के पुल में से वह, मुक्ति में ढलती है।
विद्यासागर गंगा मन निर्मल करती है।
ज्ञानाद्रि से निकली है, शिवसागर मिलती है।।३।।
नहिं राग द्वेष शैवाल, नहीं फेन विकारों का।
मिथ्यात्व का मकर नहीं, नहिं मल अतिचारों का।।
ऐसी विद्यागंगा, 'मृदु' पावन करती है।
विद्यासागर गंगा मन निर्मल करती है।
ज्ञानाद्रि से निकली है, शिवसागर मिलती है।।४।।

जीवन वन डे नहीं टेस्ट मैच है, एक बार असफल होने के बाद भी मौका मिल सकता है।

भक्तामर स्तोत्र

आस्तां तव स्तवन मस्त-समस्त-दोषं , त्वत्सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्र-किरणः कुरुते प्रभैव , पद्माकरेषु जलजानि विकास-भाञ्जि ॥9॥

अर्थ : (**अस्तसमस्तदोषम्**) सम्पूर्ण दोषों से रहित (**तव स्तवनम्**) आपका स्तवन (**आस्ताम्**) दूर रहे, किन्तु (**त्वत्सङ्कथा अपि**) आपकी पवित्र कथा भी (**जगताम्**) जगत् के जीवों के (**दुरितानि**) पापों को (**हन्ति**) नष्ट कर देती है (**सहस्त्रकिरणः**) सूर्य (**दूरे 'अस्ति'**) दूर रहता है, पर उसकी (**प्रभा एव**) प्रभा ही (**पद्माकरेषु**) तालाबों में (**जलजानि**) कमलों को (**विकास-भाञ्जि**) विकसित (**कुरुते**) कर देती है।

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण! भूतनाथ ! भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त-मभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा , भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति? ॥10॥

अर्थ : (भुवनभूषण!) हे संसार के भूषण! (भूतनाथ!) हे प्राणियों के स्वामी! (भूतैः) सच्चे (गुणैः) गुणों के द्वारा (भवन्तम् अभिष्टुवन्तः) आपकी स्तुति करने वाले पुरुष (भुवि) पृथ्वी पर (भवतः) आपके (तुल्याः) बराबर (भवन्ति) हो जाते हैं ('इदम्' अत्यद्भुतम न) यह अति आश्चर्य की बात नहीं है (वा) अथवा (ननु) निश्चय से (तेन) उस स्वामी से (किम्) क्या प्रयोजन है? (यः) जो (इह) इसलोक में (आश्रितम्) अपने आधीन पुरुष को (भूत्या) सम्पत्ति के द्वारा (आत्मसमम्) अपने बराबर (न करोति) नहीं करता।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं, नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति दुग्ध-सिन्धोः क्षारं जलं जलनिधे-रसितुं क इच्छेत् ? ॥11॥

अर्थ : (**अनिमेषविलोकनीयम्**) बिना पलक झपकाए एकटक देखने के योग्य (**भवन्तम्**) आपको (**दृष्ट्वा**) देखकर (**जनस्य**) मनुष्यों के (**चक्षुः**) नेत्र (**अन्यत्र**) दूसरी जगह (**तोषम्**) सन्तोष को (**न उपयाति**) प्राप्त नहीं होते (**शशिकरद्युति-दुग्धसिन्धोः**) चन्द्रमा की किरणों के समान कान्ति वाले क्षीरसमुद्र के (**पयः**) पानी को (**पीत्वा**) पीकर (**कः**) कौन पुरुष (**जल-निधेः**) समुद्र के (**क्षारम्**) खारे (**जलम्**) पानी को (**रसितुम् इच्छेत्**) पीने की इच्छा करेगा? अर्थात् कोई नहीं।

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वम्, निर्मापित-स्त्रिभुवनैक-ललाम-भूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां , यत्ते समान-मपरं न हि रूपमस्ति ॥12॥

अर्थ : (**त्रिभुवनैकललामभूत!**) हे त्रिभुवन के एक आभूषण! (**त्वम्**) आप (**यैः**) जिन (**शान्तरागरुचिभिः**) शान्त हो गई है रागादि दोषों की इच्छा जिनकी ऐसे (**परमाणुभिः**) परमाणुओं के द्वारा (**निर्मापितः**) रचे गए हैं (**खलु**) निश्चय से (**पृथिव्याम्**) पृथ्वी पर (**ते अणवः अपि**) वे अणु भी (**तावन्तः एव 'बभूवुः'**) उतने ही थे (**यत्**) क्योंकि (**ते समानम्**) आपके समान (**अपरम्**) दूसरा (**रूपम्**) रूप (**नहिं**) नहीं (**अस्ति**) है।

वक्त्रं क्व ते सुर- नरोरग-नेत्रहारि , निःशेष-निर्जित-जगत्-त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्क-मलिनं क्व निशाकरस्य , यद्वासरे भवति पाण्डु पलाश-कल्पम् ॥13॥

अर्थ : (**सुरनरोरगनेत्रहारि**) देव, मनुष्य तथा धरणेन्द्रों के नेत्रों को हरण करने वाला एवं (**निःशेष-निर्जित-जगत्5त्रितयोपमानम्**) सम्पूर्णरूप से जीत लिया है तीनों जगत् की उपमाओं को जिसने ऐसा (**ते वक्त्रम्**) आपका मुख (**क्व**) कहाँ? और (**कलङ्कमलिनम्**) कलंक से मलीन (**निशाकरस्य**) चन्द्रमा का (**'तद्' बिम्बम्**) वह मण्डल (**क्व**) कहाँ? (**यत्**) जो (**वासरे**) दिन में (**पलाशकल्पम्**) ढाक के पत्ते की तरह (**पाण्डु**) फीका (**भवति**) हो जाता है।

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क -कला-कलाप-, शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रि-जगदीश्वर नाथमेकं, कस्तान् निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम् ॥14॥

अर्थ : (**सम्पूर्णमण्डलशशाङ्क-कलाकलाप-शुभ्राः**) पूर्ण चन्द्रबिम्ब की कलाओं के समूह के समान स्वच्छ (**तव**) आपके (**गुणाः**) गुण (**त्रिभुवनम्**) तीनों लोकों को (**लङ्घयन्ति**) लाँघ रहे हैं/सब जगह फैले हुए हैं सो ठीक ही है, क्योंकि (**ये**) जो (**एकम्**) मुख्य (**त्रिजगदीश्वर-नाथम्**) तीनों लोकों के नाथों के नाथ के (**संश्रिताः**) आश्रित हैं (**तान्**) उन्हें (**यथेष्टम्**) इच्छानुसार (**संचरतः**) घूमते हुए (**कः**) कौन (**निवारयति**) रोक सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-, र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम् ।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन, किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ॥15॥

अर्थ : (**यदि**) यदि (**ते**) आपका (**मनः**) मन (**त्रिदशाङ्ग-नाभिः**) देवाङ्गनाओं के द्वारा (**मनाक् अपि**) थोड़ा भी (**विकारमार्गम्**) विकार भाव को (**न नीतम्**) प्राप्त नहीं कराया जा सका है (**तर्हि**) तो (**अत्र**) इस विषय में (**चित्रम् किम्**) आश्चर्य ही क्या है ? (**चलिताचलेन**) पहाड़ों को हिला देने वाली (**कल्पान्तकाल-मरुता**) प्रलयकाल की पवन के द्वारा (**किम्**) क्या? (**कदाचित्**) कभी (**मन्दराद्रिशिखरम्**) मेरुपर्वत का शिखर (**चलितम्**) हिलाया गया है? अर्थात नहीं।

निर्धूम-वर्ति रपवर्जित-तैल-पूरः, कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिता-चलानां, दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥16॥

अर्थ : (**नाथ**) हे स्वामिन् ! आप (**निर्धूमवर्तिः**) धुआँ तथा बत्ती से रहित निर्दोष प्रवृत्ति वाले और (**अपवर्जिततैलपूरः**) तैल से शून्य (**भूत्वा अपि**) होकर भी (**इदम्**) इस (**कृत्स्नम्**) समस्त (**जगत् त्रयम्**) त्रिभुवन को (**प्रकटीकरोषि**) प्रकाशित कर रहे हो तथा (**चलिताचलानाम्**) पहाड़ों को हिला देने वाली (**मरुताम्**) वायु के भी (**जातु**) कभी (**गम्यः न**) गम्य नहीं हो अर्थात् वायु बुझा नहीं सकती इस तरह (**त्वम्**) आप (**जगत्प्रकाशः**) संसार को प्रकाशित करने वाले (**अपरः दीपः**) अपूर्व दीपक (**असि**) हो।

दाँत क्यों गिरे?

चीनी दार्शनिक कनफ्यूशियस ने अपने शिष्यों से पूछा –''मेरा मुख देख रहे हो! इसमें पहले दाँत थे। क्या अब भी दाँत दिखाई दे रहे हैं?''शिष्यों ने गुरु का कहना व्यर्थ नहीं समझा, बोले – दाँत तो नहीं दिखाई दे रहे हैं। और जीभ? –अगला प्रश्न कनफ्यूशियस ने किया।

''जीभ तो दिखाई दे रही है, '' इस बार शिष्यों ने उत्साह से उत्तर दिया। कनफ्यूशियस ने पुनः प्रश्न किया जब मुख में दाँत और जीभ दोनों रहते तो दाँत कहाँ गए? जब शिष्य उत्तर नहीं दे पाए तब कनफ्यूशियस ने कहा – ''दाँत कठोर थे। इसलिए या तो वे सब गिर गए या उखाड़ दिए गए। जीभ कोमल थी इसलिए बची रही।

आठ प्रकार की मुक्ति

(१) मिथ्यात्व से मुक्ति : सौधर्मेन्द्र, लौकान्तिक देव, नवअनुदिश, पाँच अनुत्तर, सर्वार्थसिद्धि के देवों को है।
(२) असंयम से मुक्ति : आचार्य, उपाध्याय,३ कम ९ करोड़ मुनिराजों को है।
(३) प्रमाद से मुक्ति : छठवें गुणस्थान से ऊपर गुणस्थानवर्ती मुनिराजों को है।
(४) बादर कषाय से मुक्ति : दसवें गुणस्थान से लेकर ऊपर गुणस्थान वालों को है।
(५) सूक्ष्म कषाय से मुक्ति : ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर ऊपर गुणस्थान वालों को है।
(६) अज्ञान से मुक्ति : बारहवें गुणस्थान से ऊपर वालों को है।
(७) योग से मुक्ति : १४वें गुणस्थानवर्ती जीवों को, सिद्धों को।
(८) शरीर से मुक्ति : सिद्धों को।

मेरी भावना

जिसने रागद्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो।।१।।
विषयों की आशा नहिं, जिनके साम्य भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो निश-दिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं।।२।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं-जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।।
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ।
परधन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ।।३।।
अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ।।४।।
मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्त्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर - कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे।।५।।
गुणीजनों को देख हृदय में , मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।।६।।
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे।।७।।
होकर सुख में मग्न न फूलै दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहीं भय खावे।।
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्टवियोग-अनिष्टयोग में, सहनशीलता दिखलावे।।८।।
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर-पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नए मंगल गावे।।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत-दुष्कर हो जावे।
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावे।।९।।
ईति-भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।
रोग - मरी - दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे।।१०।।
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय - कटुक - कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।।
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करे।।११।।

आरती

दीपों की थाल सजाई, विद्या गुरुवर के द्वार ।
भक्त उतारे आरती, करके जय जयकार ।।

चौथे काल सरीखा देखो लगा नजारा यहाँ मजा ।
तीर्थंकर से गुरुवर लगते, समवशरण सा संघ सजा ।।
सब आओ आओ भक्तों, अब पाओ पुण्य बहार ।।
भक्त उतारे .....

जैसे सूरज के आने पर, चाँद-सितारे दिखे नहीं ।
वैसे गुरु के मुस्काने पर, दुख के दिन भी टिके नहीं ।
अब आओ गुरु बस जाओ, पापों का हो संहार ।
भक्त उतारे .....

धुआँ नहीं ना जोत दिखे पर, सदा रोशनी होती है ।
अध्यात्म का दीप जले तो, सदा दीवाली होती है ।
मिथ्यातम हरो हमारा, ओ करुणा के अवतार ।
भक्त उतारे .....

गम की रात अंधेरी में भी, डरे नहीं हम हिम्मत हो ।
आज नहीं तो कल हल होगा, सब सहने का सम्बल हो।।
बस इतनी-सी इच्छा है, दे दो मुस्कान फुहार ।।
भक्त उतारे .....

बुद्धि की शुद्धि के लिए भगवान की भक्ति से बढ़कर और कोई साधन नहीं ।
विद्या का अंतिम लक्ष्य, चारित्र निर्माण होना चाहिए।